शिक्षा में काम करने वाले स्वयं सेवी संस्थाओं के सदस्यों का अक्सर शिक्षकों के साथ संवाद का रिश्ता बनता है। इसी संवाद के दौरान शिक्षक कई बार अपनी समस्याओं और जरूरतों की उनसे चर्चा भी करते हैं। यह लेख इसी तरह की चर्चाओं के दौरान सामने आए सरोकार से अपनी बात शुरू करता है। शिक्षकों को यह लगता है कि कक्षा में बच्चों को पढ़ाना या अपने विषय की जानकारी की नहीं बल्कि उन्हें अपने उत्साह को बनाए रखने के लिए अकादमिक सहयोग की जरूरत है। लेख उन कारणों में झांकने की कोशिश करता जो शिक्षक के मनोबल को तोड़ते रहते हैं। साथ ही यह शिक्षकों को मिल रहे अकादमिक सहयोग की वास्तविकता को भी सामने लाने की कोशिश करता है।

कमलेश चंद्र जोशी

20 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं। भाषा शिक्षा, शिक्षक शिक्षा एवं बाल साहित्य में गहरी रुचि हैं एवं इन विषयों पर नियमित लिखते रहे हैं। 'प्रारम्भ शैक्षिक संवाद' पत्रिका के संपादक रहे हैं। आजकल अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन, देहरादून में कार्यरत हैं।

निर्वासित का उत्साह

शिक्षा में अपने काम के सिलसिले में अक्सर खंड संदर्भ केन्द्र (बी.आर.सी.) पर मेरा आना-जाना होता है। वहां खंड के शिक्षा अधिकारियों/समन्वयकों से बातचीत होती है। वे कहते हैं, ''सर, कुछ ऐसा कर दीजिए कि शिक्षक प्रेरित हो जाएं और बच्चों को पढ़ाने लग जाएं।'' ऐसी ही कुछ बातें अक्सर शिक्षकों से भी सुनने को मिलती हैं। वे कहते हैं, ''विषय संबंधी जानकारी तो है, बस हमें उत्साह बनाए रखने संबंधी प्रशिक्षण की जरूरत है।'' शिक्षा के क्षेत्र में काम करते हुए इस तरह की बातों से अक्सर रूबरू होना पड़ता है। वास्तव में शिक्षक के लिए प्रेरणा क्या है? यह कहां से और कैसे आती है? जब हमारा काम ही बच्चों को पढ़ाना है, तो उसमें प्रेरणा की क्या बात है? ऐसा लगता है कि वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में इस सवाल के जवाब बहुत सीधे-सरल नहीं बल्कि कहीं ज्यादा गहरे हैं। वर्तमान स्कूली व्यवस्था में बच्चों के सीखने का स्तर कम होने, उनके विद्यालय नियमित न आने, स्कूल छोड़ने, सूचनाओं के लेन-देन, समुदाय से सहयोग, शिक्षकों के न पढ़ाने की बातें अक्सर सुनने को मिलती हैं। इन प्रश्नों के हल भी कहीं न कहीं शैक्षिक व्यवस्था में ही निहित दिखाई देते हैं।

कैसे बढ़े उत्साह

खंड के शिक्षा अधिकारी/समन्वयक, जो शिक्षकों में उत्साह की कमी की बात करते हैं वे स्वयं उनके उत्साह को बनाए रखने के लिए क्या प्रयास करते हैं? इसका सुविचारित उत्तर शायद ही मिल पाए। इसके उलट उनके क्रियाकलापों से शिक्षकों के मन में काम के प्रति उदासीनता बढ़ने के कारण कहीं न कहीं दिखाई पड़ जाते हैं। इसको उनके विद्यालय में अकादमिक सहयोग के उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है।

अध्यापकों से शिक्षा में गुणवत्ता की बात हमेशा की जाती है। बच्चों के सीखने की प्रक्रिया में रटकर याद करने के बजाय समझ बनाने पर जोर देने की बात भी की जाती रही है। वर्तनी-व्याकरण सुधार के बजाय बच्चों की अभिव्यक्ति पर जोर देने की बात की जाती है। शिक्षकों को केवल पाठ्यपुस्तकें पूरा कराने के बजाय पाठ्यक्रम से पढ़ाने की बात की जाती है। परंतु इन मुद्दों को लेकर शायद ही कोई खंड सुविचारित रूप से शिक्षकों को अकादमिक सहयोग की योजना बनाते हों, जिसमें यह ठीक से तय हो कि वास्तव में स्कूल में उन्हें देखना क्या है? कक्षा प्रक्रियाओं में क्या देखना है? विद्यालयों में क्या सहयोग देना है? कैसे देना है? कक्षा में बच्चों ने क्या सीखा है? कैसे सीखा है? किन चीजों पर उन्हें दिक्कतें आ रही हैं? आदि।

वास्तविकता यह है कि वे विद्यालय में इन सब प्रक्रियाओं को देखने के बजाय अन्य प्रशासनिक बिंदुओं जैसे मध्याह्न भोजन, कक्ष निर्माण, छात्रवृत्ति वितरण, आदि का ही अवलोकन करते नजर आते हैं। जरूरत इस बात की है कि दोनों चीजों को देखा जाए। उनका शिक्षकों के काम को देखने का नजरिया भी कुछ हद तक नकारात्मक ही रहता है। शिक्षकों के काम में त्रुटियां निकालने की कोशिशें ज्यादा नजर आती हैं, जैसे उन्हें यह बताया जाएगा, ''बच्चों को कुछ नहीं आता है, आप मेहनत करो।'' अकादमिक सहयोग के नाम पर इस तरह के रवैये के कारण शिक्षकों में कहीं न कहीं यह धारणा बन जाती है कि अपने कागज, रजिस्टर आदि पूरे रखो, अधिकारी इसके बारे में ही ज्यादा पूछेंगे। खंड व संकुल स्तर की बैठकों में अधिकतर बातें भी सूचनाओं के लेन-देन तक ही सीमित रहती हैं। वहां भी बच्चों के सीखने-सिखाने संबंधी कम ही बातें की जाती हैं। जितनी बातें होती हैं उनमें भी सुविचारित योजना का अभाव नजर आता है।

अक्सर बहुत से शिक्षक यह कहते सुने जाते हैं कि हमारे अधिकारी ही बच्चों के सीखने-सिखाने पर बहुत गौर नहीं करते, वे केवल समय से सूचनाओं की प्राप्ति को ही लक्ष्य मानते हैं तो स्कूलों में पढ़ाई-लिखाई का स्तर कैसे सुधरेगा? और शिक्षक कैसे पढ़ाने में रुचि लेंगे?

अधिकारियों की समझ

अध्यापकों के सेवाकालीन प्रशिक्षणों के बारे में भी अकादमिक सहयोग के दौरान चर्चा नहीं होती। जैसे प्रशिक्षण में क्या बातें हुईं? क्या कक्षा में प्रशिक्षण का कोई असर दिखाई दे रहा है? इस पर आगे बात कैसे की जाएगी? इस बारे में बातचीत कम ही देखने को मिलती है, जबकि शिक्षा से जुड़े बहुत सारे मुद्दों पर शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण हो चुके होंगे। यहां तक कि इन प्रशिक्षणों की बातों को कई बार अकादमिक सहयोग के दौरान विपरीत रूप से भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए, प्रशिक्षण में बात की जाती है कि बच्चों की अभिव्यक्ति पर जोर हो, बच्चों के पढ़कर समझने पर जोर दिया जाए; वहीं अधिकारीगण इस बात को देखेंगे कि बच्चे सही उच्चारण के साथ पढ़ रहे हैं या नहीं। प्रशिक्षण में बताया जाता है कि शिक्षक अपने हिसाब से पढ़ाएं व पाठ्यक्रम तय

करें लेकिन अधिकारी इस बात को देखेंगे कि शिक्षकों ने अपना कोर्स पूरा किया कि नहीं। प्रशिक्षण में बात की जाती है कि बच्चों को गणित की अवधारणाओं को समझाकर पढ़ाएं वहीं अधिकारी बच्चों से उन्नीस का पहाड़ा भी पूछेंगे। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि शिक्षक सारी बातें समझ गए और वे अपना काम सुविचारित ढंग से कर रहे हैं परंतु इन अधिकारियों को इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि जो बातें पहले से की गई हैं उनका फॉलोअप नियमित किया जाए। उन बातों पर अपनी समझ विकसित करें और शिक्षकों की समझ को आगे बढ़ाने के लिए शैक्षिक अकादमिक सहयोग के ढांचे को सुदृढ़ करने का प्रयास करें, इसके तहत सब एक साझा समझ के साथ बात करें और शिक्षकों को कहीं न कहीं सकारात्मक फीडबैक मिले ताकि वे अपने कक्षा शिक्षण पर भी ध्यान केंद्रित कर सकें।

सूचना का बोझ

विद्यालय में अकादमिक सहयोग को सुदृढ़ करने के अलावा शिक्षकों में प्रेरणा का अगला बिंदु यह आता है कि शिक्षकों की प्रशासनिक समस्याओं को कैसे दूर किया जाए? खंड व जिला कार्यालय यह सुनिश्चित करें कि प्रत्येक विद्यालय में बच्चों की संख्या के अनुपात में पर्याप्त शिक्षक हों। शिक्षकों से सूचनाओं के लेन-देन की जो समस्या बार-बार आती है इसका भी अभी तक कोई ठीक-ठाक हल नहीं निकला है।

प्रत्येक जिले में शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बहुत-सी गतिविधियां आयोजित की जाती हैं। इन गतिविधियों में यह स्पष्ट नहीं होता कि जिले में इन गतिविधियों के केंद्र में कौनसी चीजें हैं? यह देखा जाता है कि जिले में विविध तरह के प्रशिक्षण जैसे क्रियात्मक शोध, परियोजना कार्य, आदि के प्रशिक्षण कराए जाते हैं। विभिन्न तरह के आयोजन मैट्रिक मेला, टी.एल.एम. मेला, आदि भी कराए जाते हैं, लेकिन कक्षा में बच्चे भाषा व गणित के बुनियादी कौशल हासिल नहीं कर पाते और उसकी कोई ठोस योजना जिले/खंड के पास नहीं होती। अगर कहीं योजना होती भी है तो उसका नियमित फॉलोअप नहीं होता। इस प्रकार गतिविधियां तो बहुत-सी की जाती हैं, परंतु वे स्पष्टतः किसी मुद्दे पर केंद्रित नहीं होतीं। इससे शिक्षकों पर इनका न कोई प्रभाव पड़ता है और न ही व्यवस्थित समझ बन पाती है। हालांकि गतिविधियां सारी हो जाती हैं, बजट भी खर्च हो जाता है। इसका मुख्य कारण यही समझ में आता है कि इन्हें केवल गतिविधि के रूप में देखा जाता है। सुविचारित योजना के अभाव में शिक्षक भी बहुत-सी गतिविधियों को सिर्फ पूरा करने के लिए करते हैं। जरूरत इस बात की है कि गतिविधियां बेशक कम की जाएं लेकिन जो कुछ भी किया जाए उसे सुविचारित योजना के तहत किया जाए। उस पर शिक्षा अधिकारियों और शिक्षकों की साझा समझ हो। इसका गहराई से फॉलोअप हो जिसका प्रभाव स्कूल स्तर पर भी देखा जा सके। इससे शिक्षकों का व्यवस्था में विश्वास बढ़ेगा, वहीं उनकी क्षमताओं में वृद्धि भी होगी।

जिले की योजना के बारे में सोचते हुए यह सवाल उठता है कि सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत इतना बजट शिक्षा पर खर्च किया जा रहा है फिर भी इसमें सूचनाओं के संग्रहण का कोई ठोस रास्ता क्यों नहीं निकाला जाता? हालांकि जिले स्तर पर जिला शिक्षा सूचना तंत्र (डायस) का डाटा हर साल भरा जाता है लेकिन जिला कार्यालय में इसको बहुत कम काम में लिया जाता है। यह प्रश्न विचारणीय है कि सूचना संग्रहण के क्या उपाय हो सकते हैं? इसके क्या तरीके हो सकते हैं, जिससे शिक्षकों के इस बोझ को हल्का किया जा सके। जिससे शिक्षक अपने शिक्षण कार्य में पूरा समय दे सकें।

बदलाव में भागीदारी

हाल के वर्षों में यह देखा गया है कि कुछ नए शैक्षिक विचारों को राज्य भर में लागू कर दिया जाता है, परंतु उस पर शिक्षकों से कोई चर्चा नहीं होती। उदाहरण के लिए, उत्तराखण्ड में पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के बाद बदलाव किया गया। इसके तहत पहली कक्षा में बच्चों को भाषा सिखाने के लिए वर्णमाला पद्धति को हटाकर समग्र भाषा पद्धति से भाषा सिखाने की बात की गई। इस मुद्दे पर सेवाकालीन शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षकों से कोई चर्चा नहीं की गई। उन्हें यह भी नहीं बताया गया कि पाठ्यपुस्तकों में क्या बदलाव किए गए हैं? क्यों किए गए हैं? इसके आधार क्या हैं? इस पद्धति को अपनाने के पीछे बच्चों को भाषा सिखाने के बारे में कौन-सा नजरिया स्वीकारा गया है? आदि। इस संबंध में जब चर्चा की गई तो यह बात सामने आई कि राज्य के स्तर पर संस्थाओं में आपस में तालमेल नहीं है। जैसे कि एस.सी.ई.आर.टी. ने पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया लेकिन सेवारत प्रशिक्षण सर्व शिक्षा अभियान द्वारा संचालित किया जाता है। इन दोनों संस्थाओं के बीच कोई तालमेल नहीं रहा। इस कारण पाठ्यपुस्तकों से जुड़े मुद्दे प्रशिक्षण में नहीं आ पाए। जमीनी स्तर पर भाषा शिक्षण से जुड़ा यह मुद्दा शिक्षकों के बीच अक्सर उभरता रहता है। उनका कहना है कि जब तक बच्चों को वर्णमाला ही नहीं सिखाई जाती, बच्चे पढ़ना कैसे सीखेंगे? कुछ शिक्षकों ने निजी प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों से वर्णमाला सिखाना शुरू कर दिया। हमने संकुल स्तर की बैठकों में इस पर बात शुरू की, लेकिन विद्यालयों में नियमित फॉलोअप के बिना यह बात आगे नहीं बढ़ पाई। आवश्यकता इस बात की थी कि सेवाकालीन प्रशिक्षण में पाठ्यपुस्तकों में बदलाव व वर्णमाला के मुद्दे पर पहले बात की जाती। इसके बाद एस.सी.ई.आर.टी. व डायट के माध्यम से बच्चों को पढ़ना सिखाने के मुद्दे पर कुछ स्कूलों में पायलट प्रयोग करके देखा जाता और पाठ्यपुस्तकों में किए गए इस बदलाव को समझने का प्रयास किया जाता। इससे शिक्षकों में इस विचार पर कोई ठोस समझ बनती और वे आत्मविश्वास से अपने विद्यालयों में काम कर पाते। तब वे भी अन्य शिक्षकों के साथ इस विचार को साझा कर पाते और यह विचार व्यवस्था में अपनी जगह बना पाता।

इन बातों पर गौर करते हुए यह कहा जा सकता है कि शिक्षकों में उत्साह बनाए रखने के सवाल को अक्सर बाहर से देखा जाता है, जबकि उसके बीज कहीं न कहीं शैक्षिक व्यवस्था के अंदर मौजूद हैं। इस उत्साह को जगाने का काम शिक्षा व्यवस्था में सुधारों के द्वारा ही किया जा सकता है, जिसमें विद्यालय के अंदर अकादमिक सहयोग के ढांचे को मजबूती देना, सुविचारित अकादमिक योजना तैयार करना, विद्यालय को नियमित अकादमिक सहयोग, शिक्षकों की कमी को दूर करना, उनकी स्थानांतरण नीति में बदलाव, व्यवस्था में पारदर्शिता, आदि बातों पर ध्यान देना होगा। इसके साथ ही शिक्षकों को यह सोचना पड़ेगा कि उन्हें उत्साह किसी प्रशिक्षण से नहीं स्वयं अपनी अंतः प्रेरणा से प्राप्त होगा। इसके लिए अपनी क्षमताओं को बढ़ाने की जरूरत होगी तथा शिक्षा में बदलाव के प्रयासों को सकारात्मक ढंग से समझने का प्रयास करना होगा। अपने में यह इच्छाशक्ति लानी होगी कि मैं यह कर सकता हूं। शिक्षकों का इस विचार पर भरोसा जगाना तथा उन्हें इसके लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराना ही शिक्षा व्यवस्था का मुख्य काम है। इस दिशा में प्रयास करने की जरूरत है, तभी शिक्षकों में उत्साह जाग्रत होगा और तब हम विद्यालय स्तर पर शैक्षिक सुधारों को देख पाएंगे। ◆